पाठ १

उपासना

(देव-शास्त्र-गुरु पूजन)

श्री जुगलकिशोरजी 'युगल'
(एम.ए., साहित्यरत्न, कोटा)

स्थापना

केवल-रवि-किरणों[१] से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
उस श्री जिनवाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन।।
सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर[२], अविरल[३] जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन देव परम आगम गुरु को, शत-शत वंदन शत-शत वंदन।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जल

इन्द्रिय के भोग मधुर-विष[४] सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया।।
मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक्[५] नीर लिये, मिथ्यामल[६] धोने आया हूँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मिथ्यात्वमलविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु ! अपने अपने में होती है।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ती है।।

---

१. केवलज्ञानरूपी सूर्य की किरणों के द्वारा। २. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकतारूपी मुक्तिमार्ग पर। ३. निरन्तर। ४. मीठा विष। ५. सम्यग्दर्शन। ६. मिथ्या-दर्शनरूपी मैल।

प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु ! चन्दन सम, शीतलता पाने आया है ।।२।।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो क्रोधकषायमलविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

उज्ज्वल हूँ कुन्द-धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किञ्चित् भी।
फिर भी अनुकूल लगे, उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही ।।
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव[१] की खण्डित काया।
निज शाश्वत[२] अक्षय-निधि[३] पाने, अब दास चरण रज में आया ।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मानकषायमलविनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता[४] का लेश नहीं ।।
चिंतन कुछ संभाषण कुछ, क्रिया कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर का कालुष[५] धोती है ।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मायाकषायमलविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त[६] रही वह रिक्त रही ।।
युग-युग से इच्छासागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
चरणों में व्यंजन अर्पित कर, अनुपम रस पीने आया हूँ ।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो लोभकषायमलविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

जग के जड़ दीपक को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
झंझा[७] के एक झकोरे में जो बनता घोर तिमिर[८] कारा ।।
अत एव प्रभो! यह नश्वर दीप, समर्पण करने आया हूँ।
तेरी अंतर लौ[९] से निज अंतर, दीप जलाने आया हूँ ।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अज्ञान अंधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

---

१. निरभिमानी आत्मस्वभाव। २. सदा रहनेवाली। ३. कभी नाश न होनेवाली निधि। ४. सरलता। ५. विकार। ६. खाली। ७. वायु का वेग या तूफान। ८. अंधकार। ९. केवलज्ञानरूपी दीपक।

धूप

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति[१] रही मेरी।
मैं रागी-द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती जड़ केरी ।।
यों भाव-करम[२] या भाव-मरण[३], सदियों[४] से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध-अनल[५] से प्रभु, पर-गंध[६] जलाने आया हूँ ।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विभावपरिणतिविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है ।।
मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्ति-रमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक[७] फल पूजा तेरी ।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

क्षण भर निज-रस को पी चेतन, मिथ्या-मल[८] को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है ।।
अनुपम सुख तब विलसित[९] होता, केवल-रवि[१०] जगमग करता है।
दर्शनबल[११] पूर्ण प्रकट होता, यह ही अरहन्त अवस्था है ।।
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु! निज गुण[१२] का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अरहन्त अवस्था पाऊँगा ।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्तवन

भव वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम[१३] मृग-तृष्णा[१४] के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा ।।

---

१. झूठी मान्यता। २-३. राग-द्वेष-मोहरूप विकारी भाव ही भावकर्म और भाव मरण हैं। ४. सैंकड़ों वर्ष। ५. अग्नि। ६. पर में एकत्व बुद्धिरूपी गंध। ७. सफल। ८. मिथ्यादर्शनरूपी मैल। ९. प्रगट होता है, शोभित होता है। १०. केवलज्ञानरूपी सूर्य। ११. अनन्त दर्शन और अनन्त वीर्य। १२. निजस्वभाव (गुणों) की साधना करूँगा। १३. मृग के समान। १४. रेगिस्तान में प्यासा हिरण बालू की सफेदी को जल समझ दौड़-धूप करता है, पर उसकी प्यास नहीं बुझती उसको मृगतृष्णा कहते हैं, उसीप्रकार यह आत्मा भोगों में सुख खोजता रहा पर मिला नहीं।

(बारह भावना)

अनित्य — झूंठे जग के सपने सारे, झूंठी मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण-भंगुर पल में मुरझायें।।
अशरण — सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृत-काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या?
संसार — संसार महा दुखसागर के, प्रभु दुखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन-कामिनी[१] प्रासादों[२] में।।
एकत्व — मैं एकाकी[३] एकत्व[४] लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।
अन्यत्व — मेरे न हुए ये, मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व[५] लिये, निज समरस[६] पीनेवाला हूँ।।
अशुचि — जिसके शृंगारों में मेरा, यह महंगा जीवन घुल जाता[७]।
अत्यन्त अशुचि[८] जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता।।
आस्रव — दिन-रात शुभाशुभ भावों में, मेरा व्यापार चला करता।
मानस[९], वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता।।
संवर — शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल[१०]।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल[११]।।
निर्जरा — फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर[१२] फूट पड़ें।।
लोक — हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त[१३] विराजें क्षण में जा।
निज लोक[१४] हमारा वासा हो, शोकांत[१५] बनें फिर हमको क्या।।
बोधिदुर्लभ — जागे मम दुर्लभ बोधि[१६] प्रभो! दुर्नय-तम[१७] सत्वर[१८] टल जावे।
बस ज्ञाता दृष्टा[१९] रह जाऊँ, मद[२०] मत्सर[२१] मोह विनश जावे।।
धर्म — चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी।।

१. स्त्री, २. महलों में, ३. अकेला, ४. अकेलापन, ५. भिन्नपना, ६. समतारूपी रस, ७. बर्बाद हो जाता है, ८. अपवित्र, ९. मन, १०. हृदय, ११. सम्यग्दर्शन, १२. आत्मशक्ति, १३. झरने, १४. मुक्ति में, १५. आत्मस्वभाव ही निजलोक है, १६. हमारे सभी शोकों का अन्त होना, १७. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र, १८. खोटे नयों रूपी अंधकार, १९. शीघ्र, २०. ज्ञानदर्शनमय, २१. अभिमान, २२. डाह।

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जाये।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जाये।।
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जायेगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक[१] में घी डाला।।
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख की ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा।।
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अत एव झुके तव चरणों में, जग के माणिक-मोती सारे।।
स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय[२] के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि[३] तिरते हैं।।
हे गुरुवर! शाश्वत सुखदर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन[४] करनेवाला है।।
जब जग विषयों[५] में रच-पच[६] कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक[७], पथ में विषकंटक बोता हो।।
हो अर्द्ध-निशा[८] का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो।।
करते तप शैल[९] नदी-तट पर, तरु-तल[१०] वर्षा की झड़ियों में।
समता-रस-पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में।।
अन्तरज्वाला[११] हरती वाणी, मानो झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव-बन्धन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जायें अन्तर की कलियाँ।।
तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ।
दिनरात लुटाया करते हो, सम-सम[१२] की अविनश्वर मणियाँ।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
हे निर्मल देव! तुम्हें प्रमाण, हे ज्ञान-दीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति-त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम।।

प्रश्न

१. चंदन और नैवेद्य के छन्दों को लिखकर उनका भाव अपने शब्दों में लिखिए।
२. जयमाला में क्या वर्णन है ? संक्षेप में लिखें।
३. संसार भावना व संवर भावना वाले छंद लिखकर उनका भाव समझाइये।

१. अग्नि, २. सुनय, ३. संसाररूपी समुद्र, ४. दिखानेवाला, ५. पंचेन्द्रियों के विषय-भोगों में, ६. लीन होकर, ७. कांटों से रहित, ८. विषय-भोगरूपी कांटे, ९. आधी रात, १०. पर्वत, ११. वृक्षों के नीचे, १२. हृदय की ज्वाला, १३. समता और शान्ति।

पाठ २ | देव-शास्त्र-गुरु

आचार्य समन्तभद्र
(व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)

लोकैषणा से दूर रहने वाले स्वामी समन्तभद्र का जीवन चरित्र एक तरह से अज्ञात ही है। जैनाचार्यों की यह विशेषता रही है कि महान कार्यों के करने के बाद भी उन्होंने अपने बारे में कहीं कुछ नहीं लिखा है। जो कुछ थोड़ा बहुत प्राप्त है, वह पर्याप्त नहीं।

आप कदम्ब राजवंश के क्षत्रिय राजकुमार थे। आपके बाल्यकाल का नाम शान्तिवर्मा था। आपका जन्म दक्षिण भारत में कावेरी नदी के तट पर स्थित उरगपुर नामक नगर में हुआ था। आपका अस्तित्व विक्रम सं. १३८ तक था।

आपके पारिवारिक जीवन के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है, आपने अल्पवय में ही मुनि दीक्षा धारण कर ली थी। दिगम्बर जैन साधु होकर आपने घोर तपश्चरण किया और अगाध ज्ञान प्राप्त किया।

आप जैन सिद्धान्त के तो अगाध मर्मज्ञ थे ही; साथ ही तर्क, न्याय, व्याकरण, छन्द, अलंकार, काव्य और कोष के भी अद्वितीय पण्डित थे। आपमें बेजोड़ वाद-शक्ति थी। आपने कई बार घूम-घूम कर कुवादियों का गर्व खण्डित किया था। आपके आत्मविश्वास को निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -

''वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम्।''

('' हे राजन् ! मैं वाद के लिए सिंह की तरह विचरण कर रहा हूँ।'')

''राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैन निर्ग्रन्थवादी।''

(''मैं जैन निर्ग्रन्थवादी हूँ। जिसकी शक्ति हो मेरे सामने बोले।'')

आपके परवर्ती आचार्यों ने आपका स्मरण बड़े ही सम्मान के साथ किया है। आपकी आद्य-स्तुतिकार के रूप में प्रसिद्धि है। आपने स्तोत्र-साहित्य को प्रौढ़ता प्रदान की है। आपकी स्तुतियों में बड़े-बड़े गंभीर न्याय भरे हुए हैं।

आपने आप्तमीमांसा, तत्त्वानुशासन, युक्त्यनुशासन, स्वयंभू स्तोत्र, जिनस्तुति शतक, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, प्राकृत-व्याकरण, प्रमाण पदार्थ, कर्म प्राभृतटीका और गंधहस्ति महाभाष्य (अप्राप्य) नामक ग्रंथों की रचना की है।

प्रस्तुत अंश रत्नकरण्ड श्रावकाचार के प्रथम अध्याय के आधार पर लिखा गया है।

आधार-रत्नकरण्ड श्रावकाचार

देव की परिभाषा

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥५॥
क्षुत्पिपासा-जरातंक-जन्मान्तक-भयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते॥६॥

शास्त्र की परिभाषा

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्य, मदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत-सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्॥९॥

गुरु की परिभाषा

विषयाशावशातीतो, निरारंभोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥१०॥

देव-शास्त्र-गुरु

सुबोध – क्यों भाई, इतने सुबह ही सन्यासी बने कहाँ जा रहे हो ?

प्रबोध – पूजन करने जा रहा हूँ। आज चतुर्दशी है न ! मैं तो प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को पूजन अवश्य करता हूँ।

सुबोध – क्यों जी ! किसकी पूजन करते हो तुम ?

प्रबोध – देव, शास्त्र और गुरु की पूजन करता हूँ।

सुबोध – किस देवता की ?

प्रबोध – जैन धर्म में व्यक्ति की मुख्यता नहीं है। वह व्यक्ति के स्थान पर गुणों की पूजा में विश्वास रखता है।

सुबोध – अच्छा तो देव में कौन-कौन से गुण होने चाहिए ?

प्रबोध – सच्चा देव वही है, जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो। जो किसी से न तो राग ही करता हो और न द्वेष, वही वीतरागी कहलाता है। वीतरागी के जन्म-मरण आदि १८ दोष नहीं होते, भूख-प्यास भी नहीं लगती; समझ लो उसने समस्त इच्छाओं पर ही विजय पा ली है।

सुबोध – वीतरागी तो समझा पर सर्वज्ञता क्या चीज है ?

प्रबोध – जो सब कुछ जानता है, वही सर्वज्ञ है। जिसके ज्ञान का पूर्ण विकास हो गया है, जो तीनलोक की सब बातें, जो भूतकाल में हो गईं, वर्तमान में हो रही हैं और भविष्य में होंगी – उन सब बातों को एकसाथ जानता है, वही सर्वज्ञ है।

सुबोध – अच्छा तो बात यह रही कि जो राग-द्वेष (पक्षपात) रहित हो और पूर्ण ज्ञानी हो, वही सच्चा देव है।

प्रबोध – हाँ ! बात तो यही है; वह जो भी उपदेश देगा, वह सच्चा और अच्छा होगा। उसका उपदेश हित करने वाला होने से ही उसे हितोपदेशी कहा जाता है।

सुबोध – उसका उपदेश सच्चा और अच्छा क्यों होगा ?

प्रबोध – झूठ तो अज्ञानता से बोला जाता है। जब वह सब कुछ जानता है तो फिर उसकी वाणी सच्ची ही होगी तथा उसे जब राग-द्वेष नहीं तो वह बुरी बात क्यों कहेगा, अत: उसका उपदेश अच्छा भी होगा।

सुबोध – देव तो समझा पर शास्त्र किसे कहते हैं ?

प्रबोध – उसी देव की वाणी को शास्त्र कहते हैं। वह वीतराग है, अत: उसकी वाणी भी वीतरागता की पोषक होती है। राग को धर्म बताये वह वीतराग की वाणी नहीं। उसकी वाणी में तत्त्व का उपदेश आता है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें कहीं भी तत्त्व का विरोध नहीं आता है।

सुबोध – इसके पढ़ने से लाभ क्या है ?

प्रबोध – जीव खोटे रास्ते चलने से बच जाता है और उसे सही रास्ता प्राप्त हो जाता है।

सुबोध – ठीक रहा। देव और शास्त्र तो तुमने समझा दिया और गुरुजी तो अपने मास्टर साहब हैं ही।

प्रबोध – पगले ! मास्टर साहब तो विद्यागुरु हैं। उनका भी आदर करना चाहिए। पर जिन गुरु की हम पूजा करते हैं, वे तो नग्न दिगम्बर साधु होते हैं।

सुबोध – अच्छा तो मुनिराज को गुरु कहते हैं, यह क्यों नहीं कहते? सीधी-सी बात है, जो नग्न रहते हों वे गुरु कहलाते हैं।

प्रबोध – तुम फिर भी नहीं समझे। गुरु नग्न रहते हैं यह तो सत्य है, पर नग्न रहने मात्र से कोई गुरु नहीं हो जाता। उनमें और भी बहुत-सी अच्छी बातें होती हैं। वे भगवान की वाणी के मर्म को जानते हैं।

सुबोध – अच्छा और कौन-कौन-सी बातें उनमें होती हैं ?

प्रबोध – वे सदा आत्मध्यान, स्वाध्याय में लीन रहते हैं। सर्व प्रकार

के आरम्भ-परिग्रह से सर्वथा रहित होते हैं। विषय-भोगों की लालसा उनमें लेशमात्र भी नहीं होती। ऐसे तपस्वी साधुओं को गुरु कहते हैं।

सुबोध - वे ज्ञानी भी होते होंगे ?

प्रबोध - क्या बात करते हो, बिना आत्मज्ञान के तो कोई मुनि बन ही नहीं सकता।

सुबोध - तो आत्मज्ञान के बिना यह क्रियाकाण्ड (बाह्याचरण या व्यवहार चारित्र) सब बेकार है क्या ?

प्रबोध - सुनो भाई ! मूल वस्तु तो आत्मा को समझ कर उसमें लीन होना है। आत्मविश्वास (सम्यग्दर्शन), आत्मज्ञान (सम्यग्ज्ञान) और आत्मलीनता (सम्यक्चारित्र) जिसमें हो तथा जिसका बाह्याचरण भी आगमानुकूल हो, वास्तव में सच्चा गुरु तो वही है।

सुबोध - तो तुम इनकी ही पूजन करने जाते होगे। हम भी चला करेंगे, पर यह तो बताओ इससे हमें मिलेगा क्या ?

प्रबोध - फिर तुमने नासमझी की बात की। पूजा इसलिए की जाती है कि हम भी उन जैसे बन जावें। वे सब कुछ छोड़ गये, उनसे संसार का कुछ माँगना कहाँ तक ठीक है?

सुबोध - अच्छा ठीक है, कल से हमें भी ले चलना।

प्रश्न

१. पूजन किसकी और क्यों करना चाहिए ?
२. सच्चा देव किसे कहते हैं ?
३. शास्त्र किसे कहते हैं ? उसकी सच्चाई का आधार क्या है ?
४. गुरु किसे कहते हैं ? उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए। क्या विद्यागुरु गुरु नहीं हैं ?
५. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए -
वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी
६. आचार्य समन्तभद्र के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए ?

पाठ ३ | सात तत्त्वों संबंधी भूल

अध्यात्मप्रेमी पण्डित दौलतरामजी

(व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व) (विक्रम संवत् १८५५-१९२३)

अध्यात्मरस में निमग्न रहनेवाले, उन्नीसवीं सदी के तत्त्वदर्शी विद्वान कविवर पण्डित दौलतरामजी पल्लीवाल जाति के नररत्न थे। आपका जन्म अलीगढ़ के पास सासनी नामक ग्राम में हुआ। बाद में आप कुछ दिन अलीगढ़ भी रहे थे। आपके पिता का नाम टोडरमलजी था।

आत्मश्लाघा से दूर रहनेवाले इन महान् कवि का जीवन-परिचय पूर्णत: प्राप्त नहीं है। पर वे एक साधारण गृहस्थ थे एवं सरल स्वभावी, आत्मज्ञानी पुरुष थे।

आपके द्वारा रचित ग्रंथ छहढ़ाला जैन समाज का बहुप्रचलित एवं समादृत ग्रन्थरत्न है। शायद ही कोई जैनी भाई हो, जिसने छहढाला का अध्ययन न किया हो। सभी जैन परीक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रम में इसे स्थान प्राप्त है।

इसकी रचना आपने विक्रम संवत् १८९१ में की थी। आपने इसमें गागर में सागर भरने का सफल प्रयत्न किया है। इसके अलावा आपने कई स्तुतियाँ एवं अध्यात्म-रस से ओतप्रोत अनेक भजन लिखे हैं, जो आज भी सारे भारतवर्ष के मंदिरों और शास्त्र-सभाओं में बोले जाते हैं। आपके भजनों में मात्र भक्ति ही नहीं, गूढ़ तत्त्व भी भरे हुए हैं।

भक्ति और अध्यात्म के साथ ही आपके काव्य में काव्योपादान भी अपने प्रौढ़तम रूप में पाये जाते हैं। भाषा, सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है, भर्ती के शब्दों का अभाव है। आपके पद हिन्दी गीत साहित्य के किसी भी महारथी के सम्मुख बड़े ही गर्व के साथ रखे जा सकते हैं।

प्रस्तुत पाठ आपकी प्रसिद्ध रचना छहढाला की दूसरी ढाल पर आधारित है।

सात तत्त्वों संबंधी भूल

जीवादि सात तत्त्वों को सही रूप में समझे बिना सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अनादिकाल से जीवों को इनके संबंध में भ्रान्ति रही है। यहाँ पर संक्षिप्त में उन भूलों को स्पष्ट किया जाता है।

जीव और अजीवतत्त्व संबंधी भूल

जीव का स्वभाव तो जानने-देखनेरूप ज्ञान-दर्शनमय है और पुद्गल से बने हुए शरीरादि - वर्ण, गंध, रस और स्पर्शवाले होने से मूर्तिक हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य और आकाशद्रव्य के अमूर्तिक होने पर भी जीव की परिणति इन सबसे जुदी है, किन्तु फिर भी यह आत्मा इस भेद को न पहिचान कर शरीरादि की परिणति को आत्मा की परिणति मान लेता है।

अपने ज्ञानस्वभाव को भूलकर शरीर की सुन्दरता से अपने को सुन्दर और कुरूपता से कुरूप मान लेता है तथा उसके संबंध से होनेवाले पुत्रादिक में भी आत्मबुद्धि करता है। शरीराश्रित उपवासादि और उपदेशादि क्रियाओं में भी अपनापन अनुभव करता है।

शरीर की उत्पत्ति से अपनी उत्पत्ति मानता है और शरीर के बिछुड़ने पर अपना मरण मानता है। यही इसकी जीव और अजीव तत्त्व के संबंध में भूल है।

जीव को अजीव मानना जीव तत्त्व संबंधी भूल है और अजीव को जीव मानना अजीव तत्त्व संबंधी भूल है।

आस्रवतत्त्व संबंधी भूल

राग-द्वेष-मोह आदि विकारी भाव प्रकट में दु:ख को देनेवाले हैं, पर यह जीव इन्हीं का सेवन करता हुआ अपने को सुखी मानता है। कहता है कि शुभराग तो सुखकर है, उससे तो पुण्य बन्ध होगा, स्वर्गादिक सुख मिलेगा; पर यह नहीं सोचता कि जो बन्ध का कारण है, वह सुख का कारण कैसे होगा तथा पहली ढाल में तो साफ ही बताया है कि स्वर्ग में सुख है कहाँ ? जब संसार में सुख है ही नहीं तो मिलेगा कहाँ से ? अत: जो

शुभाशुभ राग प्रकट दु:ख का देनेवाला है, उसे सुखकर मानना ही आस्रवतत्त्व संबंधी भूल है।

बन्धतत्त्व संबंधी भूल

यह जीव शुभ कर्मों के फल में राग करता है और अशुभ कर्मों के फल में द्वेष करता है, जबकि शुभ कर्मों का फल है भोग-सामग्री की प्राप्ति और भोग दु:खमय ही हैं, सुखमय नहीं। अत: शुभ और अशुभ दोनों ही कर्म वास्तव में संसार का कारण होने से हानिकारक हैं और मोक्ष तो शुभ-अशुभ बंध के नाश से ही होता है - यह नहीं जानता है, यही इसकी बंधतत्त्व संबंधी भूल है।

संवरतत्त्व संबंधी भूल

आत्मज्ञान और आत्मज्ञान सहित वैराग्य संवर है और वे ही आत्मा को सुखी करनेवाले हैं, उन्हें कष्टदायी मानता है। तात्पर्य यह है कि सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति और वैराग्य की प्राप्ति कष्टदायक है - ऐसा मानता है। यह उसे पता ही नहीं कि ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति आनंदमय होती है, कष्टमयी नहीं।

उन्हें कष्ट देनेवाला मानना ही संवरतत्त्व संबंधी भूल है।

निर्जरातत्त्व संबंधी भूल

आत्मज्ञानपूर्वक इच्छाओं का अभाव ही निर्जरा है और वही आनंदमय है। उसे न जानकर एवं आत्मशक्ति को भूलकर इच्छाओं की पूर्ति में ही सुख मानता है और इच्छाओं के अभाव को सुख नहीं मानता है, यही इसकी निर्जरातत्त्व संबंधी भूल है।

मोक्षतत्त्व संबंधी भूल

मुक्ति में पूर्ण निराकुलतारूप सच्चा सुख है, उसे तो जानता नहीं और भोग संबंधी सुख को ही सुख मानता है और मुक्ति में भी इसी जाति के सुख की कल्पना करता है, यही इसकी मोक्षतत्त्व संबंधी भूल है।

जबतक इन सातों तत्त्व सम्बन्धी भूलों को न निकाले, तबतक इसको सच्चा सुख प्राप्त करने का मार्ग प्राप्त नहीं हो सकता है।

आधार

चेतन को है उपयोग रूप, चिन्मूरत बिनमूरत अनूप।
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतें न्यारी है जीव चाल।

ताको न जान विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछान।
मैं सुखी-दुखी मैं रंक-राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय में सबल-दीन बेरूप-सुभग मूरख-प्रवीन।
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रकट जे दु:ख दैन, तिनहीं को सेवत गिनत चैन।
शुभ-अशुभ बंध के फल मंझार, रति-अरति करैं निजपद विसार।
आतम-हित हेतु विराग-ज्ञान, ते लखैं आपको कष्टदान।
रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।

(छहढाला, दूसरी ढाल, छन्द २ से ७ तक)

प्रश्न

१. जीव और अजीव तत्त्व के संबंध में इस जीव ने किसप्रकार की भूल की है ?
२. "हम शुभ-भाव करेंगे तो सुखी होंगे", ऐसा मानने में किस तत्त्व संबंधी भूल हुई ?
३. "तत्त्वज्ञान प्राप्त करना कष्टकर है", क्या यह बात सही है ? यदि नहीं, तो क्यों ?
४. "जैसा सुख हमें है वैसा ही उससे कई गुणा मुक्त जीवों का है", ऐसा मानने में क्या बाधा है ?
५. "यदि परस्पर प्रेम (राग) करोगे तो आनन्द में रहोगे", क्या यह मान्यता ठीक है ?

पाठ ४ चार अनुयोग

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी

(व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी के पिता श्री जोगीदासजी खण्डेलवाल दि. जैन गोदीका गोत्रज थे और माँ थीं रंभाबाई। वे विवाहित थे। उनके दो पुत्र थे - हरिश्चन्द्र और गुमानीराम। गुमानीराम महान् प्रतिभाशाली और उनके समान ही क्रान्तिकारी थे। यद्यपि पंडितजी का अधिकांश जीवन जयपुर में ही बीता, किन्तु उन्हें अपनी आजीविका के लिए कुछ समय सिंघाणा अवश्य रहना पड़ा था। वे वहाँ दिल्ली के एक साहूकार के यहाँ कार्य करते थे।

"परम्परागत मान्यतानुसार उनकी आयु २७ वर्ष की मानी जाती है, किन्तु उनकी साहित्य-साधना, ज्ञान व नवीनतम प्राप्त उल्लेखों तथा प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित हो चुका है कि वे ४७ वर्ष तक अवश्य जीवित रहे। उनकी मृत्यु-तिथि वि.सं. १८२३-२४ लगभग निश्चित है, अत: उनका जन्म वि.सं. १७७६-७७ में होना चाहिए।"[१]

उन्होंने अपने जीवन में छोटी-बड़ी बारह रचनाएँ लिखीं, जिनका परिमाण करीब एक लाख श्लोक प्रमाण है, पाँच हजार पृष्ठों के करीब। इनमें कुछ तो लोकप्रिय ग्रंथों की विशाल प्रामाणिक टीकाएँ हैं और कुछ हैं स्वतंत्र रचनाएँ। वे गद्य और पद्य दोनों रूपों में पाई जाती हैं -

१. मोक्षमार्गप्रकाशक (मौलिक)
२. रहस्यपूर्ण चिट्ठी (मौलिक)
३. गोम्मटसार पूजा (मौलिक)
४. समोशरण रचना वर्णन (मौलिक)

१. पं. टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, पृष्ठ- ५३

५. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय भाषा टीका
६. आत्मानुशासन भाषा टीका
७. गोम्मटसार जीवकाण्ड भाषा टीका
८. गोम्मटसार कर्मकांड भाषा टीका
९. अर्थसंदृष्टि अधिकार
१०. लब्धिसार भाषा टीका
११. क्षपणासार भाषा टीका
१२. त्रिलोकसार भाषा टीका

आपके संबंध में विशेष जानकारी के लिए ''पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व'' नामक ग्रंथ देखना चाहिए। प्रस्तुत पाठ मोक्ष-मार्ग प्रकाशक के अष्टम अधिकार के आधार पर लिखा गया है।

चार अनुयोग

छात्र – मोक्षमार्गप्रकाशक में किसकी कहानी है ?

अध्यापक – मोक्षमार्गप्रकाशक में कहानी थोड़े ही है, उसमें तो मुक्ति का मार्ग बताया गया है।

छात्र – अच्छा तो मोक्षमार्गप्रकाशक क्या शास्त्र नहीं है ?

अध्यापक – क्यों ?

छात्र – शास्त्र में तो कथायें होती हैं। हमारे पिताजी तो कहते थे कि मन्दिर चला करो, शाम को वहाँ शास्त्र बँचता है, उसमें अच्छी-अच्छी कहानियाँ निकलती हैं।

अध्यापक – हाँ ! हाँ ! शास्त्रों में महापुरुषों की कथायें भी होती हैं। जिन शास्त्रों में महापुरुषों के चरित्रों द्वारा पुण्य-पाप के फल का वर्णन होता है और अंत में वीतरागता को हितकर बताया जाता है, उन्हें प्रथमानुयोग के शास्त्र कहते हैं।

छात्र – तो क्या शास्त्र कई प्रकार के होते हैं ?

अध्यापक – शास्त्र तो जिनवाणी को कहते हैं, उसमें तो वीतरागता का पोषण होता है। उसके कथन करने की विधियाँ चार हैं; जिन्हें अनुयोग कहते हैं – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

छात्र – हमें तो कहानियाँ वाला शास्त्र ही अच्छा लगता है, उसमें खूब आनन्द आता है।

अध्यापक – भाई ! शास्त्र की अच्छाई तो वीतरागतारूप धर्म के वर्णन में है, कोरी कहानियों में नहीं।

छात्र – तो फिर यह कथाएँ शास्त्रों में लिखी ही क्यों हैं ?

अध्यापक – तुम ही कह रहे थे कि हमारा मन कथाओं में खूब लगता है। बात यही है कि रागी जीवों का मन केवल वैराग्य-कथन में लगता नहीं। अत: जिसप्रकार बालक को पतासे के साथ दवा देते हैं, उसीप्रकार तुच्छ बुद्धि जीवों को कथाओं के माध्यम से धर्म (वीतरागता) में रुचि कराते हैं और अंत में वैराग्य का ही पोषण करते हैं।

छात्र – अच्छा ! यह बात है। यह पुराण और चरित्र-ग्रंथ प्रथमानुयोग में आते होंगे। करणानुयोग में किस बात का वर्णन होता है ?

अध्यापक – करणानुयोग में गुणस्थान, मार्गणास्थान आदि रूप तो जीव का वर्णन होता है और कर्मों तथा तीनों लोकों का भूगोल संबंधी वर्णन होता है। इसमें गणित की मुख्यता रहती है, क्योंकि गणना और नाप का वर्णन होता है न !

छात्र – यह तो कठिन पड़ता होगा ?

अध्यापक – पड़ेगा ही, क्योंकि इसमें अति सूक्ष्म केवलज्ञानगम्य बात का वर्णन होता है। गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, लब्धिसार और त्रिलोक-सार ऐसे ही ग्रन्थ हैं।

छात्र – चरणानुयोग सरल पड़ता होगा ?

अध्यापक – हाँ ! क्योंकि इसमें स्थूल बुद्धिगोचर कथन होता है। इसमें सुभाषित, नीति-शास्त्रों की पद्धति मुख्य है, क्योंकि इसमें गृहस्थ और मुनियों के आचरण नियमों का वर्णन होता है। इस अनुयोग में जैसे भी यह जीव पाप छोड़कर धर्म में लगे अर्थात् वीतरागता में वृद्धि करे वैसे ही अनेक युक्तियों से कथन किया जाता है।

छात्र – तो रत्नकरण्ड श्रावकाचार इसी अनुयोग का शास्त्र होगा ?

अध्यापक - हाँ ! हाँ !! वह तो है ही। साथ ही मुख्यतया पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय आदि और भी अनेक शास्त्र हैं।

छात्र - तो क्या समयसार और द्रव्यसंग्रह भी इसी अनुयोग के शास्त्र हैं ?

अध्यापक - नहीं ! वे तो द्रव्यानुयोग के शास्त्र हैं; क्योंकि षट् द्रव्य, सप्त तत्त्व आदि का तथा स्व-पर भेदविज्ञान आदि का वर्णन तो द्रव्यानुयोग में होता है।

छात्र - इसमें भी करणानुयोग के समान केवलज्ञानगम्य कथन होता होगा ?

अध्यापक - नहीं ! इसमें तो चरणानुयोग के समान बुद्धिगोचर कथन होता है, पर चरणानुयोग में बाह्य क्रिया की मुख्यता रहती है और द्रव्यानुयोग में आत्मपरिणामों की मुख्यता से कथन होता है। द्रव्यानुयोग में न्यायशास्त्र की पद्धति मुख्य है।

छात्र - इसमें न्यायशास्त्र की पद्धति मुख्य क्यों है ?

अध्यापक - क्योंकि इसमें तत्त्व निर्णय करने की मुख्यता है। निर्णय युक्ति और न्याय के बिना कैसे होगा ?

छात्र - कुछ लोग कहते हैं कि अध्यात्म-शास्त्र में बाह्याचार को हीन बताया है, पर स्थान-स्थान पर स्वच्छन्द होने का भी तो निषेध किया है। इससे तो लोग आत्मज्ञानी बनकर सच्चे व्रती बनेंगे।

छात्र - यदि कोई अज्ञानी भ्रष्ट हो जाय तो ?

अध्यापक - यदि गधा मिश्री खाने से मर जाय तो सज्जन तो मिश्री खाना छोड़े नहीं, उसीप्रकार यदि अज्ञानी तत्त्व की बात सुनकर भ्रष्ट हो जाय तो ज्ञानी तो तत्त्वाभ्यास छोड़े नहीं; तथा वह तो पहले भी मिथ्यादृष्टि था, अब भी मिथ्यादृष्टि ही रहा। इतना ही नुकसान होगा कि सुगति न होकर कुगति होगी, रहेगा तो संसार का संसार में ही। परन्तु अध्यात्म-उपदेश न होने पर भी बहुत जीवों के माक्षमार्ग का अभाव होता है और

इसमें बहुत जीवों का बहुत बुरा होता है, अत: अध्यात्म-उपदेश का निषेध नहीं करना।

छात्र - जिनसे खतरे की आशंका हो, वे शास्त्र पढ़ना ही क्यों ? उन्हें न पढ़ें तो ऐसी क्या हानि है ?

अध्यापक - मोक्षमार्ग का मूल उपदेश तो अध्यात्म-शास्त्रों में ही है, उनके निषेध से मोक्षमार्ग का निषेध हो जायेगा।

छात्र - पर पहिले तो उन्हें न पढ़ें ?

अध्यापक - जैनधर्म के अनुसार तो यह परिपाटी है कि पहले द्रव्यानुयोगानुसार सम्यग्दृष्टि हो, फिर चरणानु-योगानुसार व्रतादि धारण कर व्रती हो। अत: मुख्य रूप से तो निचली दशा में ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है।

छात्र - पहिले तो प्रथमानुयोग का अभ्यास करना चाहिए?

अध्यापक - पहिले इसका अभ्यास करना चाहिए, फिर उसका, ऐसा नियम नहीं है। अपने परिणामों की अवस्था देखकर जिसके अभ्यास से अपनी धर्म में रुचि और प्रवृत्ति बढ़े, उसी का अभ्यास करना अथवा कभी इसका, कभी उसका, इसप्रकार फेर-बदल कर अभ्यास करना चाहिए। कई शास्त्रों में तो दो-तीन अनुयोगों की मिली पद्धति से भी कथन होता है।

प्रश्न

१. अनुयोग किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के हैं ?
२. पं. टोडरमलजी के अनुसार अनुयोगों का अभ्यासक्रम क्या है ?
३. द्रव्यानुयोग का अभ्यास क्यों आवश्यक है ? उसमें किस पद्धति से किस बात का वर्णन होता है ?
४. चरणानुयोग और करणानुयोग में क्या अन्तर है ?
५. प्रत्येक अनुयोग के कम से कम दो-दो ग्रंथों के नाम लिखिए?
६. पं. टोडरमलजी के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए ?

पाठ ५ | तीन लोक

आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी
(व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)

तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं, गृद्धपिच्छोपलक्षितम् ।
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ।।

कम से कम लिखकर अधिक से अधिक प्रसिद्धि पानेवाले आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र से जैन समाज जितना अधिक परिचित है, उनके जीवन परिचय के संबंध में उतना ही अपरिचित है।

ये कुन्दकुन्दाचार्य के पट्ट शिष्य थे तथा विक्रम की प्रथम शताब्दी के अन्तिम काल में तथा द्वितीय शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत-भूमि को पवित्र कर रहे थे।

आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी उन गौरवशाली आचार्यों में हैं, जिन्हें समग्र आचार्य परम्परा में पूर्ण प्रामाणिकता और सम्मान प्राप्त है। जो महत्त्व वैदिकों में गीता का ईसाइयों में बाइबिल का और मुसलमानों में कुरान का माना जाता है, वही महत्त्व जैन परम्परा में गृद्धपिच्छ उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र को प्राप्त है। इसका दूसरा नाम मोक्षशास्त्र भी है। यह संस्कृत भाषा का सर्वप्रथम जैन ग्रन्थ है।

यह ग्रन्थराज जैन समाज द्वारा संचालित सभी परीक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रमों में निर्धारित है और सारे भारतवर्ष के जैन विद्यालयों में पढ़ाया जाता है।

प्रस्तुत अंश तत्त्वार्थसूत्र के तृतीय और चतुर्थ अध्याय के आधार पर लिखा गया है।

छात्र - गुरुजी ! आज प्रवचन में सुना था कि कुन्दकुन्दाचार्य देव श्री सीमन्धर भगवान के दर्शन करने विदेह क्षेत्र गये थे। यह विदेह क्षेत्र कहाँ है ?

अध्यापक - यह सारा विश्व तीन लोकों में बँटा हुआ है। जहाँ हम और तुम रहते हैं, यह मध्यलोक है। इसमें असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं, वे एक-दूसरे को घेरे हुए हैं। सबके मध्य जम्बूद्वीप है। उसके चारों ओर लवण समुद्र है, उसके चारों ओर धातकी-खण्ड द्वीप है, उसके भी चारों ओर कालोदधि समुद्र है, फिर पुष्करवर द्वीप और पुष्करवर समुद्र। इसीप्रकार असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं।

छात्र - हम और आप तो जम्बूद्वीप में रहते हैं, पर सीमन्धर भगवान कहाँ रहते हैं ?

अध्यापक - वे भी जम्बूद्वीप में ही रहते हैं। पर भाई ! जम्बूद्वीप छोटा-सा थोड़े ही है। यह तो एक लाख योजन विस्तार वाला है। इसके बीचोंबीच सुमेरु नामक गोल पर्वत है तथा इस गोल जम्बूद्वीप को विभाजित करने वाले छः महापर्वत हैं, जो कि पूर्व से लेकर पश्चिम तक पड़े हुए हैं, जिनके नाम हैं - हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी।

छात्र - जब ये पूर्व से पश्चिम तक पड़े हुए हैं तो जम्बूद्वीप तो सात भागों में बँट गया समझो।

अध्यापक - हाँ ! इन्हीं सात भागों को तो सात क्षेत्र कहते हैं, जिनके नाम हैं - भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत।

छात्र - अब समझा कि जम्बूद्वीप का जो बीचवाला हिस्सा विदेह क्षेत्र है, वही सीमंधर भगवान हैं। पर हम........?

अध्यापक - उसके ही दक्षिण में जो भरत क्षेत्र है न, उसी में हम रहते हैं। यहीं आचार्य कुन्दकुन्द जन्मे थे और वे विदेह क्षेत्र गये थे।

जम्बू द्वीप

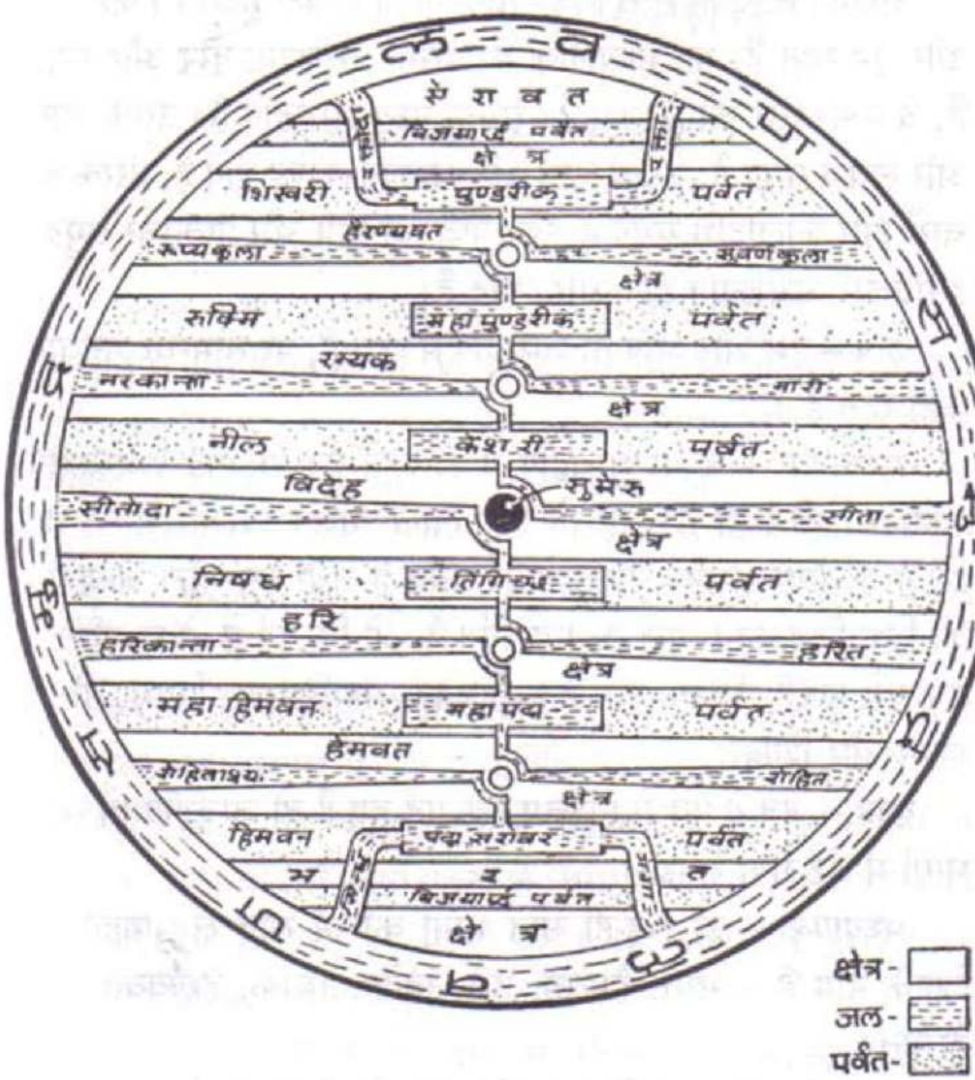

छात्र – हम भी नहीं जा सकते क्या वहाँ ?

अध्यापक – नहीं भाई ! बताया था न कि रास्ते में बड़े-बड़े विशाल पर्वत हैं। उन पर्वतों पर प्रत्येक पर एक-एक विशाल सरोवर है। उनमें से १४ नदियाँ निकलती हैं और सातों क्षेत्रों में बहती हैं। उनके नाम हैं – गंगा-सिंधु, रोहित-रोहितास्या, हरित-हरिकान्ता सीता-सीतोदा, नारी-नरकान्ता, सुवर्णकूला-रूप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा।

ये नदियाँ क्रम से भरत से लेकर ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक में दो-दो बहती हैं, जिनमें पहली पूर्व समुद्र में और दूसरी पश्चिम समुद्र में गिरती है।

इस मध्यलोक को तिर्यक् लोक भी कहते हैं, क्योंकि यह तिरछा बसा है न।

छात्र – क्या मतलब, बस्तियाँ तो तिरछी ही होती हैं ?

अध्यापक – मध्यलोक की बस्तियाँ तिरछी हैं, पर अधोलोक की नहीं। वे तो एक के नीचे एक हैं।

छात्र – हैं, क्या कहा ? अधोलोक !

अध्यापक – हाँ ! हाँ !! इसी पृथ्वी के नीचे सात नरक हैं, जिनके नाम हैं – रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुका-प्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तम:प्रभा, महातम-प्रभा। वे क्रमश: एक के नीचे एक हैं। वे बस्तियाँ बहुत ही दुखद हैं। रहने का स्थान भी बिलों के सदृश है। वहाँ की जलवायु बहुत ही दूषित है। वहाँ के जीव बाह्य वातावरण की प्रतिकूलता से दु:खी तो हैं ही, पर उनके कषायों की तीव्रता भी है, अत: आपस में मारकाट किया करते हैं। नरक क्या? दु:ख का घर ही है। जब जीव घोर पाप करता है तो वहाँ उत्पन्न होता है। जो जीव वहाँ उत्पन्न होते हैं, उन्हें नारकी कहते हैं।

छात्र – पापी जीव तो नरक में जाते हैं और पुण्यात्मा ?

अध्यापक – पुण्यात्मा स्वर्ग में जाते हैं।

छात्र – ये स्वर्ग कहाँ है और कैसे हैं ?

अध्यापक – स्वर्ग ! स्वर्ग ऊर्ध्वलोक में हैं।

छात्र – ये तिरछे हैं या नीचे-नीचे ?

अध्यापक – ये तो ऊपर-ऊपर हैं।

छात्र – अच्छा नरक तो सात हैं पर स्वर्ग ?

अध्यापक – स्वर्ग तो सोलह हैं, जिनके नाम हैं – सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, सतार-सहस्रार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत। इनके भी ऊपर नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान हैं। सर्वार्थसिद्धि इन्हीं पाँचों में पाँचवाँ विमान है।

छात्र – इसके ऊपर क्या है ?

अध्यापक – सिद्धशिला; जहाँ अनंत सिद्ध विराजमान हैं। सामान्यत: यही तीन लोक की रचना है।

छात्र – गुरुजी ! हमें तो पूर्ण संतोष नहीं हुआ, विस्तार से समझाइये?

अध्यापक – एक दिन के पाठ में इससे अधिक क्या समझाया जा सकता है ? यदि तुम्हें जिज्ञासा हो तो तत्त्वार्थसूत्र, तत्त्वार्थवार्तिक, त्रिलोकसार आदि शास्त्रों से जानना चाहिए।

प्रश्न

१. जम्बूद्वीप का नक्शा बनाइये तथा उसमें प्रमुख स्थान दर्शाइये।
२. नरक कितने हैं ? उनके नाम लिखकर वहाँ की स्थिति का चित्रण अपने शब्दों में कीजिए।
३. क्षेत्रों का विभाजन करने वाले पर्वतों और क्षेत्रों के नाम लिखकर कुन्दकुन्द और सीमन्धर स्वामी का निवास बताइये।

पाठ ६

सप्त व्यसन

कविवर पण्डित बनारसीदासजी

(व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)

अध्यात्म और काव्य दोनों क्षेत्रों में सर्वोच्च प्रतिष्ठा-प्राप्त पण्डित बनारसीदासजी सत्रहवीं शताब्दी के रससिद्ध कवि और आत्मानुभवी विद्वान थे।

आपका जन्म श्रीमाल वंश में लाला खरगसेन के यहाँ वि.सं. १६४३ में माघ सुदी एकादशी रविवार को हुआ था। उस समय इनका नाम विक्रमजीत रखा गया था, परन्तु बनारस की यात्रा के समय पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी के नाम पर इनका नाम बनारसीदास रखा गया। ये अपने माँ-बाप की इकलौती संतान थे।

आपने अपने जीवन में बहुत से उतार-चढ़ाव देखे थे। आर्थिक विषमता का सामना भी आपको बहुत बार करना पड़ा था तथा आपका पारिवारिक जीवन भी कोई अच्छा नहीं रहा। आपकी तीन शादियाँ हुईं, नौ संताने हुईं – ७ पुत्र एवं २ पुत्रियाँ; पर एक भी जीवित नहीं रहीं। ऐसी विषम-परिस्थिति में भी आपका धैर्य भंग नहीं हुआ, क्योंकि वे आत्मानुभवी पुरुष थे।

काव्य-प्रतिभा तो आपको जन्म से ही प्राप्त थी। १४ वर्ष की उम्र में आप उच्चकोटि की कविता करने लगे थे, पर प्रारम्भिक जीवन में श्रृंगारिक कविताओं में मग्न रहे। इनकी सर्वप्रथम कृति 'नवरस' १४ वर्ष की उम्र में तैयार हो गई थी, जिसमें अधिकांश श्रृंगार रस का ही वर्णन

था। यह इस रस की एक उत्कृष्ट कृति थी, जिसे विवेक जागृत होने पर कवि ने गोमती नदी में बहा दिया।

इसके पश्चात् आपका जीवन अध्यात्ममय हो गया और उसके बाद की रचित चार रचनाएँ प्राप्त हैं – 'नाटक समयसार', बनारसीदास विलास', 'नाममाला', और 'अर्द्धकथानक'।

'नाटक समयसार' अमृतचन्द्राचार्य के कलशों का एक तरह से पद्यानुवाद है, किन्तु कवि की मौलिक सूझबूझ के कारण इसके अध्ययन में स्वतंत्र कृति-सा आनंद आता है। यह ग्रन्थराज अध्यात्म सराबोर है।

'अर्द्धकथानक' हिन्दी भाषा का प्रथम आत्म-चरित्र है, जो कि अपने आप में एक प्रौढ़तम कृति है। इसमें कवि का ५५ वर्ष का जीवन आईने के रूप में चित्रित है।

'बनारसी-विलास' कवि की अनेक रचनाओं का संग्रह-ग्रन्थ है और 'नाममाला' कोष-काव्य है।

कवि अपनी आत्म-साधना और काव्य-साधना दोनों में ही बेजोड़ है।

सप्त व्यसन

जुआ आमिष मदिरा दारी,
आखेटक चोरी परनारी।
एही सात व्यसन दुखदाई,
दुरित मूल दुर्गति के भाई।।
दर्वित ये सातों व्यसन, दुराचार दुखधाम।
भावित अंतर-कल्पना, मृषा मोह परिणाम।।

अशुभ में हार शुभ में जीत यहै द्यूत कर्म।
देह की मगनताई, यहै मांस भखिबो।।

मोह की गहल सों अजान यहै सुरापान।
कुमति की रीति गणिका को रस चखिबो।।
निर्दय ह्वै प्राण-घात करबो यहै शिकार।
पर-नारी संग पर-बुद्धि को परखिबो।।
प्यार सौं पराई सौंज गहिबे की चाह चोरी।
एई सातों व्यसन विडारि ब्रह्म लखिबो।।

– पण्डित बनारसीदासजी

जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरापान करना, वेश्यागमन करना, शिकार खेलना, चोरी करना, परस्त्री-सेवन करना – ये सात व्यसन हैं।

किसी भी विषय में लवलीन होने को अर्थात् आदत को व्यसन कहते हैं। यहाँ बुरे विषय में लीन होना व्यसन कहा गया है और इसके सात भेद कहे हैं, जो जीवों में प्रमुख रूप से आकुलता पैदा करते हैं और दुराचारी बनाते हैं। वैसे राग-द्वेष और आकुलता उत्पन्न करनेवाली सभी आदतें व्यसन ही हैं। निश्चय से तो आत्मा के स्वरूप को भुला दे, वे मिथ्यात्व से युक्त राग-द्वेष परिणाम ही व्यसन हैं।

१. जुआ – हार-जीत पर दृष्टि रखते हुए रुपये-पैसे या किसी प्रकार के धन से कोई भी खेल-खेलना या शर्त लगाकर कोई काम करना या दाव लगाकर अधिक लाभ की आशा या हानि का भय होना द्रव्य-जुआ है।

शुभ (पुण्योदय) में जीत (हर्ष) तथा अशुभ (पापोदय) में हार (विषाद) मानना भाव-जुआ है। इस भाव (मान्यता) का त्याग ही सच्चा जुआ या त्याग है।

२. मांस खाना – मार कर या मरे हुए जीवों का कलेवर खाने में आसक्त रहना एवं भक्षण करना द्रव्य-मांस खाना व्यसन है।

देह में मगन रहना अर्थात् शरीर के पुष्ट होने पर अपना (आत्मा का) हित एवं शरीर के दुबले होने पर अपना (आत्मा का) अहित मानना भाव-मांस खाना व्यसन है।

३. मदिरापान – शराब, भांग, चरस, गांजा आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करना द्रव्य-मदिरापान है।

तथा मोह में पड़कर आत्मस्वरूप से अनजान रहना, भाव मदिरापान है।

४. वेश्यागमन करना – वेश्या से रमना, उसके घर आना-जाना द्रव्यरूप से वेश्यागमन है।

तथा खोटी बुद्धि में रमने का भाव, भाव वेश्यागमन है अर्थात् अपने आत्म-स्वभाव को छोड़ विषय-कषाय में बुद्धि रमाना ही भाव वेश्यारमण है। वेश्या धन, स्वास्थ्य तथा इज्जत नष्ट कर छोड़ देती है, पर मिथ्यामति (कुबुद्धि) तो आत्मा की प्रतिष्ठा को हर कर अनंतकाल के निगोद के दु:खों में ढकेल देती है।

५. शिकार खेलना – जंगल के रीछ, बाघ, हिरण, सुअर वगैरह स्वच्छन्द फिरनेवाले जानवरों को तथा छोटे-छोटे पक्षियों को निर्दय होकर बन्दूक आदि किसी भी हथियार से मारना व मारकर आनन्दित होना द्रव्यरूप से शिकार खेलना है।

तथा तीव्र रागवश ऐसे कार्य करने के भावों द्वारा अपने चैतन्य प्राणों का घात करना, यह भावरूप से शिकार खेलना है।

६. परस्त्रीरमण करना – अपनी धर्मानुकूल ब्याही हुई पत्नी को छोड़कर अन्य स्त्रियों के साथ रमण करना, द्रव्य-परस्त्रीरमण व्यसन है।

तत्त्व को समझने का यत्न न करके दूसरों की बुद्धि की परख में ही ज्ञान का सदुपयोग मानना वह भाव परस्त्रीरमण है।

७. चोरी करना – प्रमाद से बिना दी हुई किसी वस्तु को ग्रहण करना द्रव्य चोरी है।

तथा प्रीतिभाव (मोहभाव) से परवस्तु से साझेदारी की चाह करना (अपनी मानना) ही भाव चोरी है।

इन सात व्यसनों को त्यागे बिना आत्मा को नहीं जाना जा सकता है।

जिसे संसार के दु:खों से अरुचि हुई हो और आत्मस्वरूप प्राप्त कर सच्चा सुख प्राप्त करना हो, उसे सर्वप्रथम उक्त सात व्यसनों का त्याग

अवश्य ही कर देना चाहिए; क्योंकि जब तक एक भी व्यसन रहेगा, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती। आत्मरुचि से आत्मस्वभाव की वृद्धि में आनंदित होने से भाव व्यसन सहज छूट जाते हैं। ये सातों व्यसन वर्तमान में भी प्रत्यक्षरूप से दु:खदाई जगत्-निन्द्य हैं। व्यसन सेवन करनेवाले व्यसनी और दुराचारी कहलाते हैं।

प्रश्न

१. कविवर पं. बनारसीदासजी के व्यक्तित्व व कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए।
२. व्यसन किसे कहते हैं ? वे कितने होते हैं ? नाम सहित गिनाइये।
३. द्रव्य-जुआ, भाव-मदिरापान, भाव-परस्त्रीरमण और द्रव्य-शिकार व्यसन को स्पष्ट कीजिए।
४. निम्नलिखित पंक्तियों को स्पष्ट कीजिए –
   (क) "देह की मगनताई, यहै मांस भखिबो।"
   (ख) "प्यार सौं पराई सौंज गहिबे की चाह चोरी।"

पाठ ७

अहिंसा : एक विवेचन

आचार्य अमृतचन्द्र
(व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)

आध्यात्मिक सन्तों में कुन्दकुन्दाचार्य के बाद यदि किसी का नाम लिया जा सकता है तो वे हैं आचार्य अमृतचन्द्र। दु:ख की बात है कि १०वीं शती के लगभग होनेवाले इन महान् आचार्य के बारे में उनके ग्रन्थों के अलावा एक तरह से हम कुछ भी नहीं जानते।

आपका संस्कृत भाषा पर अपूर्व अधिकार था। आपकी गद्य और पद्य – दोनों प्रकार की रचनाओं में आपकी भाषा भावानुवर्तिनी एवं सहज बोधगम्य, माधुर्य गुण से युक्त है। आप आत्मरस में निमग्न रहने वाले महात्मा थे, अत: आपकी रचनायें अध्यात्म-रस से ओत प्रोत हैं।

आपके सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं। आपकी रचनायें गद्य और पद्य दोनों प्रकार की पाई जाती हैं। गद्य रचनाओं में आचार्य कुन्दकुन्द के महान् ग्रन्थों पर लिखी हुई टीकायें हैं –

१. समयसार की टीका – जो ''आत्मख्याति'' के नाम से जानी जाती है।

२. प्रवचनसार टीका – जिसे ''तत्त्वप्रदीपिका'' कहते हैं।

३. पञ्चास्तिकाय टीका – जिसका नाम ''समय व्याख्या'' है।

४. तत्त्वार्थसार – यह ग्रन्थ गृद्धपिच्छ उमास्वामी के गद्य सूत्रों का एक तरह से पद्यानुवाद है।

५. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय – यह गृहस्थ धर्म पर आपका मौलिक ग्रन्थ है। इसमें हिंसा और अहिंसा का बहुत ही तथ्यपूर्ण विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत निबन्ध आपके ग्रन्थ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय पर आधारित है।

अहिंसा : एक विवेचन

''अहिंसा परमो धर्म:'' अहिंसा को परम धर्म घोषित करने वाली यह सूक्ति आज बहुप्रचलित है। यह तो एक स्वीकृत तथ्य है कि अहिंसा ही परम धर्म है। पर प्रश्न यह है कि अहिंसा क्या है ?

हिंसा और अहिंसा की चर्चा जब भी चलती है, हमारा ध्यान प्राय: दूसरे जीव को मारना, सताना या रक्षा करना आदि की ओर ही जाता है। हिंसा और अहिंसा का संबंध प्राय: दूसरों से ही जोड़ा जाता है। दूसरों की हिंसा मत करो, बस यही अहिंसा है, ऐसा ही सर्वाधिक विश्वास है। अपनी भी हिंसा होती है, इस तरफ बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है। जिनका जाता भी है तो वे आत्महिंसा का अर्थ विषभक्षणादि द्वारा आत्मघात (आत्महत्या) ही मानते हैं, पर उसके अन्तर्तम तक पहुँचने का प्रयत्न नहीं किया जाता है। अन्तर में राग-द्वेष की उत्पत्ति भी हिंसा है, इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं। यही कारण है कि आचार्य अमृतचन्द्र ने हिंसा और अहिंसा की परिभाषा बताते समय अन्तरंग दृष्टि को ही प्रधानता दी है। वे लिखते हैं–

''आप्रादुर्भाव: खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्ति: हिंसेति जिनागमस्य संक्षेप: ।।

राग-द्वेष-मोह आदि विकारी भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है और उन भावों का उत्पन्न नहीं होना ही अहिंसा है।''

अत: वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि राग-द्वेष-मोहरूप परिणतिमय होने से झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह भी प्रकारान्तर से हिंसा ही है। वे कहते हैं –

आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय ।।

आत्मा के शुद्ध परिणामों के घात होने से झूठ, चोरी आदि हिंसा ही

हैं, भेद करके तो मात्र शिष्यों को समझाने के लिए कहे गये हैं।

योग्य आचरण करनेवाले सत्पुरुष के रागादि भावों के नहीं होने पर केवल परप्राण-पीड़न होने से हिंसा नहीं होती तथा अयत्नाचार (असावधानी) प्रवृत्तिवाले जीव के अन्य जीव मरें, चाहे न मरें, हिंसा अवश्य होती है; क्योंकि वह कषाय भावों में प्रवृत्त रहकर आत्मघात तो करता ही रहता है और 'आत्मघाती महापापी' कहा गया है।

यहाँ कोई कह सकता है कि जब दूसरे जीव का मरने और न मरने से हिंसा का कोई संबंध नहीं है तो फिर हिंसा के कार्यों से बचने की क्या आवश्यकता है ? बस परिणाम ही शुद्ध रखे रहे। इसका उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं -

सूक्ष्मापि न खलु हिंसा परवस्तुनिबंधना भवति पुंस: ।
हिंसायतननिवृत्ति: परिणामविशुद्धये तदपि कार्या ।।

हालांकि परवस्तु के कारण रंचमात्र भी हिंसा नहीं होती है, फिर भी परिणामों की शुद्धि के लिए हिंसा के स्थान परिग्रहादिक को छोड़ देना चाहिए।

व्यवहार में जिसे हिंसा कहते हैं - जैसे किसी को सताना, दु:ख देना आदि हिंसा न हो - यह बात नहीं है। वह तो हिंसा है ही, क्योंकि उसमें प्रमाद का योग रहता है। पर हमारा लक्ष्य उसी पर केन्द्रित हो जाता है और हम अन्तर्तम में होनेवाली भावहिंसा की तरफ दृष्टि नहीं डाल पाते हैं, अत: यहाँ पर विशेषकर अन्तर में होनेवाली रागादि भावरूप भावहिंसा की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है। जिस जीव के बाह्य स्थूलहिंसा का भी त्याग नहीं होगा, वह तो इस अन्तर की हिंसा को समझ ही नहीं सकता।

अत: चित्तशुद्धि के लिए अभक्ष्य-भक्षणादि एवं रात्रि-भोजनादि हिंसक कार्यों का त्याग तो अति आवश्यक है ही तथा मद्य, मांस, मधु एवं पंच उदुम्बर फलों का त्याग भी आवश्यक है; क्योंकि इनके सेवन से अनन्त त्रस जीवों का घात होता है तथा परिणामों में क्रूरता आती है।

अहिंसक वृत्तिवाले मंद कषायी जीव की इसप्रकार की अनर्गल प्रवृत्ति नहीं पाई जा सकती है।

हिंसा दो प्रकार की होती है -

(१) द्रव्य हिंसा

(२) भाव हिंसा

जीवों के घात को द्रव्य-हिंसा कहते हैं और घात करने के भाव को भाव-हिंसा, इतना तो प्राय: लोग समझ लेते हैं; पर बचाने का भाव भी वास्तव में सच्ची अहिंसा नहीं, क्योंकि वह भी रागभाव है - यह प्राय: नहीं समझ पाते।

रागभाव चाहे वह किसी भी प्रकार का हो, उसकी उत्पत्ति निश्चय से तो हिंसा ही है, क्योंकि वह बंध का कारण है। जब रागभाव की उत्पत्ति को हिंसा की परिभाषा में आचार्य अमृतचन्द्र ने सम्मिलित किया होगा, तब उसके व्यापक अर्थ (शुभ राग और अशुभ राग) का ध्यान उन्हें न रहा हो - ऐसा नहीं माना जा सकता।

अहिंसा की सच्ची और सर्वोत्कृष्ट परिभाषा आचार्य अमृतचन्द्र ने दी है कि रागभाव किसी भी प्रकार का हो, हिंसा ही है। यदि उसे कहीं अहिंसा कहा हो तो उसे व्यवहार (उपचार) का कथन जानना चाहिए।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ऐसी अहिंसा तो साधु ही पाल सकते हैं; अत: यह तो उनकी बात हुई। सामान्यजनों (श्रावकों) को तो दयारूप (दूसरों को बचाने का भाव) अहिंसा ही सच्ची है। पर आचार्य अमृतचन्द्र ने श्रावक के आचरण के प्रकरण में ही इस बात को लेकर यह सिद्ध किया है कि अहिंसा दो प्रकार की नहीं होती, अहिंसा को जीवन में उतारने के स्तर दो हो सकते हैं; हिंसा तो हिंसा ही रहेगी। यदि श्रावक पूर्ण हिंसा का त्यागी नहीं हो सकता तो वह अल्प हिंसा का त्याग करे; पर जो हिंसा वह छोड़ न सके, उसे अहिंसा तो नहीं माना जा सकता है। यदि हम पूर्णत: हिंसा का त्याग नहीं कर सकते हैं तो हमें अंशत: त्याग करना चाहिए। यदि वह भी न कर सकें तो कम से कम

हिंसा को धर्म मानना और कहना तो छोड़ना ही चाहिए। शुभराग राग होने से हिंसा में आता है और उसे हम धर्म मानें, यह तो ठीक नहीं।

राग-द्वेष-मोह भावों की उत्पत्ति होना हिंसा है और उन्हें धर्म मानना महाहिंसा है तथा रागादि भावों की उत्पत्ति नहीं होना ही परम अहिंसा है और रागादि भावों को धर्म नहीं मानना ही अहिंसा के संबंध में सच्ची समझ है।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि तीव्र राग तो हिंसा है, पर मंद राग को हिंसा क्यों कहते हो ? पर बात यह है कि जब राग हिंसा है तो मंद राग अहिंसा कैसे हो जायेगा, वह भी तो राग की ही एक दशा है। यह बात अवश्य है कि मंद राग मंद हिंसा है और तीव्र राग तीव्र हिंसा है। अत: यदि हम हिंसा का पूर्ण त्याग नहीं कर सकते हैं तो उसे मंद तो करना ही चाहिए। राग जितना घटे उतना ही अच्छा है, पर उसके सद्भाव को धर्म नहीं कहा जा सकता है। धर्म तो राग-द्वेष-मोह का अभाव ही है और वही अहिंसा है, जिसे परम धर्म कहा जाता है।

प्रश्न

१. ''अहिंसा'' पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिये, जिसमें अहिंसा के संबंध में प्रचलित गलत धारणाओं का निराकरण करते हुए सम्यक् विवेचन कीजिए।
२. आचार्य अमृतचन्द्र के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए ?
३. ''रागादि भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है और रागादि भावों की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है।'' उक्त विचार का तर्कसंगत विवेचन कीजिए।
४. मंद राग को अहिंसा कहने में क्या आपत्ति है ? स्पष्ट कीजिए?

पाठ ८ | अष्टाह्निका महापर्व

दिनेश - आओ भाई जिनेश ! पान खाओगे ?

जिनेश - नहीं।

दिनेश - क्यों ?

जिनेश - तुम्हें पता नहीं ! आज कार्तिक सुदी अष्टमी है न ! आज से अष्टाह्निका महापर्व आरम्भ हो गया है।

दिनेश - तो क्या हुआ ? त्यौहार तो खाने-पीने के होते ही हैं। पर्व के दिनों में तो लोग बढ़िया खाते, बढ़िया पहिनते और मौज से रहते हैं। और तुम............?

जिनेश - भाई ! यह खाने-पीने का पर्व नहीं है, यह तो धार्मिक पर्व है। इसमें तो लोग संयम से रहते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, तात्त्विक चर्चाएँ करते हैं। यह तो आत्मसाधना का पर्व है। धार्मिक पर्वों का प्रयोजन तो आत्मा में वीतरागभाव की वृद्धि करने का है।

दिनेश - इस पर्व को अष्टाह्निका क्यों कहते हैं ?

जिनेश - यह आठ दिन तक चलता है न। अष्ट=आठ, अह्नि=दिन। आठ दिन का उत्सव सो अष्टाह्निका पर्व।

दिनेश - तो यह प्रतिवर्ष कार्तिक में आठ दिन का होता होगा ?

जिनेश - हाँ भाई ! कार्तिक में तो प्रतिवर्ष आता ही है। पर यह तो वर्ष में तीन बार आता है। अष्टाह्निका पूजन में कहा है न-

कार्तिक फागुन साढ़ के, अंत आठ दिन माँहि।
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजें इह ठाँहि।।

कार्तिक सुदी अष्टमी से पूर्णिमा तक, फाल्गुन सुदी अष्टमी से पूर्णिमा तक और आषाढ़ सुदी अष्टमी से पूर्णिमा तक, वर्ष में तीन बार यह पर्व मनाया जाता है। देवता लोग तो इस पर्व को मनाने के लिए नन्दीश्वर द्वीप जाते हैं, पर हम वहाँ तो जा नहीं सकते; अत: यहीं भक्तिभाव से पूजा करते हैं।

दिनेश – यह नन्दीश्वर द्वीप कहाँ है ?

जिनेश – तुमने तीन लोक की रचना वाला पाठ पढ़ा था न। उसमें मध्यलोक में जो असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं, उनमें यह आठवाँ द्वीप है।

दिनेश – हम वहाँ क्यों नहीं जा सकते ?

जिनेश – तीसरे पुष्कर द्वीप में एक पर्वत है, जिसका नाम है मानुषोत्तर पर्वत। मनुष्य उसके आगे नहीं जा सकेगा, इसलिए उसका नाम मानुषोत्तर पर्वत पड़ा है।

दिनेश – अच्छा ! वहाँ ऐसा क्या है, जो देव वहाँ जाते हैं ?

जिनेश – वहाँ बहुत मनोज्ञ अकृत्रिम (स्वनिर्मित) ५२ जिन मंदिर हैं। वहाँ जाकर देवगण पूजा, भक्ति और तत्त्वचर्चा आदि के द्वारा आत्मसाधना करते हैं। हम लोग वहाँ नहीं जा सकते, अत: यहीं पर विविध धार्मिक आयोजनों द्वारा आत्महित में प्रवृत्त होते हैं।

दिनेश – यह पर्व भारतवर्ष में कहाँ–कहाँ मनाया जाता है और इसमें क्या–क्या होता है ?

जिनेश – सारे भारतवर्ष में जैन समाज इस महापर्व को बड़े ही उत्साह से मनाता है। अधिकांश स्थानों पर सिद्धचक्र विधान का पाठ होता है, बाहर से विद्वान बुलाये जाते हैं, उनके आध्यात्मिक विषयों पर प्रवचन होते हैं। एक तरह से सब जगह जैन समाज में धार्मिक वातावरण छा जाता है।

दिनेश – यह सिद्धचक्र क्या है ? इसके पाठ में क्या होता है ?

जिनेश – सिद्धचक्र ? क्या तुमने कभी सिद्धचक्र का पाठ नहीं देखा ?

दिनेश – नहीं।

जिनेश – सिद्ध तो मुक्त जीवों को कहते हैं। जो संसार के बंधनों से छूट गये हैं, जिसमें अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख प्रकट हो गये हैं, जो अष्टकर्म से रहित हैं, राग–द्वेष के बन्धनों से मुक्त हैं, ऐसे अनन्त परमात्मा लोक के अग्रभाग में विराजमान हैं, उन्हें ही सिद्ध कहते हैं और उनका समुदाय ही सिद्धचक्र हुआ। अत: सिद्धचक्र के पाठ में सिद्धों की पूजन–भक्ति होती है। साथ ही उसकी जयमालाओं में बहुत सुन्दर आत्महित करनेवाले तत्त्वोपदेश भी होते हैं, जो कि समझने योग्य हैं।

दिनेश – जयमाला में तो स्तुति होती है ?

जिनेश – स्तुति तो होती ही है, साथ ही सिद्धों ने सिद्धदशा कैसे प्राप्त की, इस सन्दर्भ में मुक्ति के मार्ग का भी प्रतिपादन हो जाता है।

दिनेश – क्या तुम उनका अर्थ मुझे समझा सकते हो ?

जिनेश – नहीं भाई ! जब सिद्धचक्र का पाठ होता है तो बाहर से बुलाये गये या स्थानीय विशेष विद्वान जयमाला का अर्थ करते हैं, उस समय हमें ध्यान से समझ लेना चाहिए।

दिनेश – उनके पूजन–विधान से क्या लाभ ?

जिनेश – हम उनके स्वरूप को पहिचान कर यह जान सकते हैं कि जैसी ये आत्माएँ शुद्ध और पवित्र हैं, वैसा ही हमारा स्वभाव शुद्ध और निरंजन है और इनके समान मुक्ति का मार्ग अपनाकर हम भी इनके समान अनंत सुखी और अनंत ज्ञानी बन सकते हैं। यह पर्वराज दशलक्षण पर्व के बाद दूसरे नम्बर का धार्मिक महापर्व है।

दिनेश – हमने सुना है कि सिद्धचक्र–विधान से कुष्ठ रोग मिट जाता है।

कहते हैं कि श्रीपाल और उनके सात सौ साथियों का कोढ़ इसी से मिटा था। उनकी पत्नी मैना सुन्दरी ने सिद्धचक्र का पाठ करके गंधोदक उन पर छिड़का और कोढ़ गायब।

जिनेश – सिद्धचक्र की महिमा मात्र कुष्ठ-निरोध तक सीमित करना उसकी महानता में कमी करना है। कुष्ठ तो शरीर का रोग है, आत्मा का कोढ़ तो राग-द्वेष-मोह है। जो आत्मा सिद्धों के सही स्वरूप को जानकर उन जैसी अपनी आत्मा को पहिचानकर उसमें ही लीन हो जावे तो जन्म-मरण और राग-द्वेष-मोह जैसे महारोग भी समाप्त हो जाते हैं।

सिद्धों की आराधना का सच्चा फल तो वीतराग भाव की वृद्धि होना है, क्योंकि वे स्वयं वीतराग हैं। सिद्धों का सच्चा भक्त उनसे लौकिक लाभ की चाह नहीं रखता। फिर भी उसके अतिशय पुण्य का बंध तो होता ही है, अत: उसे लौकिक अनुकूलतायें भी प्राप्त होती हैं, पर उसकी दृष्टि में उनका कोई महत्त्व नहीं।

दिनेश – मैं तो समझता था कि त्यौहार खाने-पीने और मौज उड़ाने के ही होते हैं, पर आज समझ में आया कि धार्मिक पर्व तो वीतरागता की वृद्धि करनेवाले संयम और साधना के पर्व हैं। अच्छा, मैं भी तुम्हारे समान इन दिनों में संयम से रहूँगा और आत्म-तत्त्व को समझने का प्रयास करूँगा।

प्रश्न

१. धार्मिक पर्व किसप्रकार मनाये जाते हैं ?
२. अष्टाह्निका के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
३. नन्दीश्वर द्वीप कहाँ है ? उसमें क्या है ?
४. यह पर्व कब-कब मनाया जाता है ?
५. सिद्धचक्र किसे कहते हैं ? सिद्धों की आराधना का फल क्या है?
६. क्या तुमने कभी सिद्धचक्र का पाठ होते देखा है ? उसमें क्या होता है ? समझाइये।

पाठ ९

भगवान पार्श्वनाथ

कविवर पं. भूधरदासजी
(वि. संवत् १७५०-१८०६)

वैराग्य रस से ओतप्रोत आध्यात्मिक पदों के प्रणेता प्राचीन जैन कवियों में भूधरदासजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके पद, छन्द और कवित्त समस्त धार्मिक समाज में बड़े आदर से गाये जाते हैं।

आप आगरा के रहनेवाले थे। आपका जन्म खण्डेलवाल जैन जाति में हुआ था, जैसा कि जैन-शतक के अन्तिम छंद में आप स्वयं लिखते हैं-

आगरे में बाल बुद्धि, भूधर खण्डेलवाल,
बालक के ख्याल सो कवित्त कर जाने हैं।

ये हिन्दी और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। अब तक इनकी तीन रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं- जिनके नाम जैन-शतक, पार्श्वपुराण एवं पद-संग्रह है। जैन-शतक में करीब सौ विविध छन्द संगृहीत हैं, जो कि बड़े सरल एवं वैराग्योत्पादक हैं।

पार्श्वपुराण को तो हिन्दी के महाकाव्यों की कोटि में रखा जा सकता है। इसमें २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन का वर्णन है। यह उत्कृष्ट कोटि के काव्योपादानों से युक्त तो है ही, साथ ही इसमें अनेक सैद्धान्तिक विषयों का भी रोचक वर्णन है।

आपके आध्यात्मिक पद तो अपनी लोकप्रियता, सरलता और कोमलकान्त पदावली के कारण जनमानस को आज भी उद्वेलित करते रहते हैं।

प्रस्तुत पाठ आपके द्वारा लिखित पार्श्वपुराण के आधार पर लिखा गया है।

भगवान पार्श्वनाथ

अध्यापक – रमेश ! तुम पार्श्वनाथ के बारे में क्या जानते हो ?

रमेश – जी, पार्श्वनाथ एक रेल्वे स्टेशन का नाम है।

अध्यापक – अपने स्थान पर खड़े हो जाओ। तुम्हें उत्तर देने का तरीका भी नहीं मालूम ? खड़े होकर उत्तर देना चाहिए। सभ्यता सीखो। हम पूछते हैं भगवान पार्श्वनाथ की बात, आप बताते हैं स्टेशन का नाम।

रमेश – जी, मैं कलकत्ता गया था। रास्तें में पार्श्वनाथ नाम का स्टेशन आया था, अत: कह दिया। कुछ गलती हो गई हो तो क्षमा करें।

अध्यापक – पार्श्वनाथ स्टेशन का भी नाम है, पर जानते हो कि उस स्टेशन का नाम पार्श्वनाथ क्यों पड़ा ? उसके पास एक पर्वत है, जिसका नाम सम्मेदशिखर है। वहाँ से तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ ने निर्वाण प्राप्त किया था। यही कारण है कि उस स्टेशन का नाम भी पार्श्वनाथ रखा गया, यहाँ तक कि उस पर्वत को भी पारसनाथ हिल कहा जाता है। यह जैनियों का बहुत बड़ा तीर्थक्षेत्र है, यहाँ लाखों आदमी प्रतिवर्ष यात्रा करने आते हैं। यह स्थान बिहार प्रान्त में हजारीबाग जिले में ईसरी के पास है। पार्श्वनाथ के अलावा और भी कई तीर्थंकरों ने यहाँ से परमपद (मोक्ष) प्राप्त किया है।

सुरेश – और पार्श्वनाथ का जन्म-स्थान कौन-सा है ?

अध्यापक – काशी, जिसे आजकल वाराणसी (बनारसी) कहते हैं। आज से करीब तीन हजार वर्ष पहले इक्ष्वाकुवंश के काश्यप गोत्रीय वाराणसी नरेश अश्वसेन के यहाँ उनकी विदुषी पत्नी वामादेवी के उदर से, पौष कृष्ण

एकादशी के दिन पार्श्वकुमार का जन्म हुआ था। उनके जन्म कल्याणक का उत्सव उनके माता-पिता और जनपदवासियों ने तो मनाया ही था, पर साथ में देवों और इन्द्रों ने भी बड़े उत्साह से मनाया था।

पार्श्वकुमार जन्म से ही प्रतिभाशाली और चमत्कृत बुद्धिनिधान अवधिज्ञान के धारक थे। वे अनेक सुलक्षणों के धनी, अतुल्य बल से युक्त, आकर्षक व्यक्तित्व वाले बालक थे।

सुरेश – वे तो राजकुमार थे न ? उन्हें तो सबप्रकार की लौकिक सुविधायें प्राप्त रही होंगी।

अध्यापक – इसमें क्या सन्देह ! वे राजकुमार होने के साथ ही अतिशय पुण्य के धनी थे, देवादिक भी उनकी सेवा में उपस्थित रहते थे। यही कारण है कि उन्हें किसी प्रकार की सामग्री की कमी न थी, पर राज्य-वैभव एवं पुण्य-सामग्री के लिए उनके हृदय में कोई स्थान न था, भोगों की लालसा उन्हें किंचित् भी न थी। वैभव की छाया में पलने पर भी जल में रहनेवाले कमल के समान उससे अलिप्त ही थे।

युवा होने पर उनके माता-पिता ने बहुत ही प्रयत्न किये, पर उन्हें विवाह करने को राजी न कर सके। वे बाल ब्रह्मचारी ही रहे।

जिनेश – ऐसा क्यों ?

अध्यापक – वे आत्मज्ञानी तो जन्म से थे ही, उनका मन सदा जगत से उदास रहता था। एक दिन एक ऐसी घटना घटी कि जिसने उनके हृदय को झकझोर दिया और वे दिगम्बर साधु होकर आत्मसाधना करने लगे।

जिनेश – वह कौन-सी घटना थी ?

अध्यापक – एक दिन प्रात:काल वे अपने साथियों के साथ घूमने जा रहे थे। रास्ते में वे देखते हैं कि उनके नाना साधु वेश में पंचाग्नि तप तप रहे हैं। जलती हुई लकड़ी के बीच एक नाग-नागिनी का जोड़ा था, वह भी जल रहा था। पार्श्वनाथ ने अपने दिव्य ज्ञान (अवधिज्ञान) से यह सब जान लिया और उनको इसप्रकार के काम करने से मना किया, पर जब तक उस लकड़ी को फाड़कर नहीं देख लिया गया तब तक किसी ने उनका विश्वास नहीं किया। लकड़ी फाड़ते ही उसमें से अधजले नाग-नागिनी निकले।

रमेश – हैं, वे जल गये ! यह तो बहुत बुरा हुआ। फिर.... ?

अध्यापक – फिर क्या ? पार्श्वकुमार ने उन नाग-नागिनी को संबोधित किया और मंद कषाय से मर कर धरणेन्द्र और पद्मावती हुए।

रमेश – अच्छा हुआ, चलो; उनका भव तो सुधर गया।

अध्यापक – देव हो गये-इसमें क्या अच्छा हुआ ? अच्छा तो यह हुआ कि उनकी रुचि सन्मार्ग की ओर हो गई।

इस हृदयविदारक घटना से पार्श्वकुमार का कोमल हृदय वैराग्यमय हो गया और पौष कृष्ण एकादशी के दिन वे दिगम्बर साधु हो गये।

सुरेश – फिर तो उन्होंने घोर तपश्चर्या की होगी ?

अध्यापक – हाँ, फिर वे अखण्ड मौन-व्रत धारण कर आत्मसाधना में लीन हो गये। एक बार वे अहिक्षेत्र के वन में ध्यानस्थ थे। ऊपर से उनका पूर्व-जन्म का वैरी संवर नामक देव जा रहा था। उन्हें देखकर उसका पूर्व-वैर जागृत हो गया और उसने मुनिराज पार्श्वनाथ पर घोर उपसर्ग किया। पानी बरसाया, ओले बरसाये,

यहाँ तक कि घोर तूफान चलाया और पत्थर तक बरसाये, पर पार्श्वनाथ आत्मसाधना से डिगे नहीं और उन्हें उसी समय चैत्र कृष्ण चतुर्दशी के दिन केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। यह देखकर वह देव पछताता हुआ उनके चरणों में लोट गया।

जिनेश – हमने तो सुना था कि उस समय उन धरणेन्द्र-पद्मावती ने पार्श्वनाथ की रक्षा की थी।

अध्यापक – साधारण देव-देवी तीनलोक के नाथ की क्या रक्षा करेंगे ? वे तो अपनी आत्मसाधना द्वारा पूर्ण सुरक्षित थे ही, पर बात यह है कि उस समय धरणेन्द्र और पद्मावती को उनके उपसर्ग को दूर करने का विकल्प अवश्य आ गया था तथा उन्होंने यथाशक्य अपने विकल्प की पूर्ति भी की थी।

उसके बाद वे करीब सत्तर वर्ष तक सारे भारतवर्ष में समवशरण सहित विहार करते रहे एवं दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को तत्त्वोपदेश देते रहे। वे अपने उपदेशों में सदा ही आत्मसाधना पर बल देते रहे। वे कहते कि यह आत्मा ही अनन्तज्ञान और सुख का भंडार है – इसकी श्रद्धा किये बिना, इसे जाने बिना और इसमें लीन हुए कोई भी कभी सच्चा सुख प्राप्त नहीं कर सकता है।

लाखों जीवों ने उनके उपदेशों से लाभ लेकर आत्मशान्ति प्राप्त की। महाकवि भूधरदासजी उनके उपदेशों के प्रभाव का चित्रण करते हुए लिखते हैं-

केई मुक्ति जोग बड़भाग,
भये दिगम्बर परिग्रह त्याग।
किनही श्रावक व्रत आदरे,
पसु पर्याय अनुव्रत धरे ।।

केई नारी अर्जिका भईं,
भर्ता के संग वन को गईं।
केई नर पशु देवी देव,
सम्यक् रत्न लह्यौ तहाँ एव ।।

\- - - - - - -

इह विध सभा समूह सब, निवसै आनन्द रूप।
मानो अमृत रूप सौं, सिंचत देह अनूप ।।

इसप्रकार वे उपदेश देते हुए अन्त में सौ वर्ष की आयु में श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन सम्मेदशिखर के सुवर्णभद्रकूट से निर्वाण पधारे।

प्रश्न

१. कविवर पं. भूधरदासजी का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
२. पारसनाथ हिल के बारे में आप क्या जानते हैं ?
३. भगवान पार्श्वनाथ का संक्षिप्त जीवन-परिचय दीजिए।
४. ''धरणेन्द्र-पद्मावती ने पार्श्वनाथ की रक्षा की थी'' - इस संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
५. वह कौन-सी घटना थी, जिसे देखकर पार्श्वकुमार दिगम्बर साधु हो गये ?

\-----

पाठ १० | देव-शास्त्र-गुरु

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

समयसार[१] जिनदेव हैं, जिन प्रवचन जिनवाणि।
नियमसार[२] निर्ग्रन्थ गुरु, करे कर्म की हानि ।।

(देव)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अब तक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी[३] के चक्कर खाना ।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा ।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी ना मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह[४] जग से कृतकृत[५], इतना ना मैंने पहिचाना ।।
प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
यह जगत स्वयं परिणमनशील केवलज्ञानी ने गाया है ।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्त्ता अब तक, सत्[६] का न प्रभो सम्मान किया ।।

(शास्त्र)

भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद नय अनेकान्त मय, समयसार समझाया है ।।

● प्रचलित मूलप्रति में ''जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है'' है पर बालकों की दृष्टि से कठिन जानकर उक्त परिवर्तन किया गया है।

१. शुद्धात्मा (स्वभाव दृष्टि से कारणपरमात्मा और पर्याय दृष्टि से कार्य परमात्मा)। २. शुद्ध (निश्चय) चारित्र। ३. चौरासी लाख योनियाँ। ४. इच्छारहित। ५. जिन्हें कुछ करना बाकी न रहा हो, उन्हें कृतकृत्य कहते हैं। ६. वस्तुस्वभाव।

उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय[१] गमाया है।
शुद्धात्म रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।
मैं समझ न पाया था अब तक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्त्व निकलते हैं।।
राग धर्ममय धर्म रागमय, अब तक ऐसा जाना था।
शुभ कर्म कमाते सुख होगा, बस अब तक ऐसा माना था।।
पर आज समझ में आया है कि वीतरागता धर्म अहा।
राग भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा।।
वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हमको जो दिखलाती है।।

(गुरु)

उस वाणी के अन्तर्तम[२] को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है।।
दिन रात आत्मा का चिंतन, मृदु सम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रगट हो रहा अन्तर्मन।।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते[३] जो।
ज्ञानी ध्यानी समरससानी[४], द्वादश विधि तप नित करते जो।।
चलते फिरते सिद्धों से गुरु, चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं।।
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिन की चर्या समरससानी।।

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की खानि हैं, मैं बंदों धरि ध्यान।।

प्रश्न

१. देव, शास्त्र और गुरु की स्तुति में से प्रत्येक की स्तुति की चार-चार लाइनें जो आपको रुचिकर हों, लिखिए तथा रुचिकर होने का कारण भी बताइये।

---

१. शुद्धात्मा का स्वरूप। २. अन्तरंग भाव को। ३. लीन रहते हैं। ४. समतारस में निमग्न।